IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 11, Issue 6, June 2024

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.802

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति

Dr. Sunita Meena

Assistant Professor, Department of Hindi, Govt. College, Baswa, Dausa, Rajasthan, India

सार: महिलायें इस संसार की रक्षक होती हैं। आदिवासी समाज की महिलाओं को संपत्ति का अधिकार नहीं मिलता और न ही इस समाज में दहेज प्रथा प्रचलन है । इस समाज में डादून प्रथा प्रचलित है बल्कि सवर्ण समाज में नहीं है । स्त्री को चरित्रहीन वही व्यक्ति घोषित करता है वह एक पुरुष होता है जो वैद्य होता है ।

I. परिचय

आर्य भारत में जिस जनजाति के रूप में आए थे उसका स्वरूप ग्रामीण था केवल पुरुषों के इस समूह में एक भी स्त्री नहीं थी। नदी किनारे, जंगलों, पर्वतों, घाटियों में अपने पशुओं सहित ये निवास करने लगे और इन्होंने वहाँ की आदिवासी लड़कियों से शादी करके परिवार बसाए। उन्होंने आदिवासी पुरुषों को अपना गुलाम बनाया और पितृसत्तात्मक परंपरा का निर्वाह करने लगे। आदिवासी समाज बदलता चला गया।

भारत की पूरी आबादी का आठवां हिस्सा आदिवासी है। हर आठ भारतीय में एक व्यक्ति आदिवासी है। आदिवासी महिलाओं का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामयिक पि रवेश में महत्त्व कहीं अधिक है। फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में इनका प्रतिशत शून्य है। औरत चाहे महानगर या नगर की सभ्य, पढ़ी-लिखी जागरुक औरत हो या जंगलों में बसी, कबीलों में बंटी निरक्षर आदिवासी औरत.... पुरुष की सोच मैं कोई फर्क नहीं है।

आदिवासियों में और कई जनजातियों में आज भी मातृसत्ता ही है। सामाजिक सत्ता स्त्री के हाथों में ही है। इनका गोत्र भी माँ के नाम से ही चलता है। कमोबेश यह स्थिति पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों में भी है। स्त्रियों का यहाँ वर्चस्व है और सा री संपत्ति पर बेटियों का अधिकार है फिर भी फैसलों के मामलों में परिवार मामा और पिता पर निर्भर रहते हैं। बाजार पर स्त्रियों का ही अधिपत्य रहता है। चूँकि महिलाएं श्रम से जुडी हुई हैं, इसलिए वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं और यही कारण है कि वे अपना निर्णय लेने के लिए भी आजाद हैं। अर्थ का तंत्र उनके हाथों में है इसलिए आर्थिक रूप से वे ही परिवार की धुरी हैं।[1]

आदिवासी समाज में कुछ परंपराएँ औरतों के हित में भी हैं। उन्हें दहेज के लिए प्रताड़ित नहीं किया जाता शादी और तलाक को लेकर भी उनके अपने अधिकार हैं। वे मर्दों के साथ खेती, जंगल, पशुपालन आदि कामों में बराबरी का हिस्सा लेती है।अगर कोई स्त्री अपनी इच्छा से किसी से भी विवाह कर लेती है तो माता-पिता या परिवार उसका बहिष्कार नहीं करता। इसके साथ ही हमारे यहाँ दहेज जैसी भी कोई प्रथा नहीं है, बल्कि इसके विपरीत वर पक्ष एक किस्म का वधू मूल्य लड़की को देता है, जो कि जमीन या धन के रूप में हो सकता है। कोई भी स्त्री अगर अपने विवाह से सुखी नहीं है या रिश्ते में किसी प्रकार की कोई अनबन होती है तो वह उस रिश्ते को निभाने के लिए बाध्य भी नहीं की जाती। यह पुनर्विवाह करने के लिए भी आजाद है, जिसमें कि जो भी दूसरा पति होगा वो उस महिला का वधूमूल्य उसके पूर्व पति को लौटा देता है। यही वजह है कि यहाँ बेटी का जन्म कोई बोझ नहीं समझा जाता।

आदिवासियों में आज भी पति-पत्नी के बीच सम्बंध-विच्छेद होते हैं। मामूली बातों को लेकर पत्नी अपने पति को अलविदा कह देती है। बस उसे दावा बूंदी प्रथा के अनुसार अपना फैसला पंचों को बताना होता है। पंच पूर्व पति को विवाह में आए खर्च का भुगतान करवाकर एक बैठक में किसी फलदार वृक्ष की लकड़ी को दोनों पक्षों से तुड़वा देते हैं और मान लिया जाता है कि अब इनके बीच जिनके के बराबर भी रिश्ता नहीं रहा।

आदिवासी स्त्री दुबारा शादी तो कर सकती है पर बेहद सादे तरीके से जबकि पुरुष चाहे जितनी शादी करे धूमधाम से ही करता है। औरत के दुवारा शादी करने पर कुछ रीतिरिवाज बदल जाते हैं। पुरुषों के साथ ऐसा नहीं है औरतों का अपने पिता कि संपत्ति पर कोई कानूनी अधिकार नहीं है। उसके पैदा होते ही जमीन का एक टुकड़ा उसके नाम कर दिया जाता है। उसी से उसका भरण-पोषण और विवाह का खर्चा निकलता है। विवाह के बाद वह जमीन भाइयों के नाम कर दी जाती है। अगर भाई नहीं है तो रिश्ते के भाई वह जमीन ले लेते हैं। भारत में आदिवासियों के त्यौहार और धार्मिक परंपराएँ हिन्दू धर्म से अलहदा है। आदिवासी विवाह में साल वृक्ष से बनाया गया स्तंभ मंडप के द्वार पर सजाया जाता है। साल और मोहा वृक्षों की वेदी पर ही दूल्हा बैठता है। यह आवश्यक माना जाता है।

उड़ीसा के गंगम जिले में गोडापट्टी जाति में औरतों को बेचने की प्रथा है। भूख, लाचारी और आर्थिक संकट के समय आदिवासी अपनी औरतों को या तो बेच देते हैं या गिरवी रख देते हैं। उड़ीसा के अंदरूनी इलाकों जैसे फुलवनी आदि में बसे आदिवासी आज

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

भी मुट्ठीभर चावल के लिए मोहताज हैं। आदिवासियों में पति की मृत्यु के पश्चात औरत अपने देवर से शादी कर सकती है। यदि देवर अविवाहित है तो उसे पहले किसी अन्य स्त्री से विवाह करना होता है तब वह अपनी विधवा भाभी से विवाह कर सकता है। दापुर के आदिवासी सरपंच की चौदह बीवियाँ हैं मुसीबत के समय वह अपनी पत्नी को बेच देता है। आदिवासी अपनी लड़कियों को रुपये के लालच में कभी-कभी ऐसे दलालों के हाथ बेच देते हैं जो उन्हें वेश्याचल तक पहुँचा देते हैं। कई लड़कियाँ योगिनी बनाकर मंदिरों में रखी जाती हैं यानी धार्मिक वेश्याएँ बन जाती हैं।

आदिवासी समाज में स्त्रियों को लांछित करना, उनका अपमान करना आम बात है ऐसा नहीं कि सारे आदिम समुदाय स्त्री की दशा को लेकर दूध के धुले हैं। ऊपरी हवा यानी भूत-प्रेत, जादू-टोना, देवात्मा का किसी व्यक्ति के शरीर में आ जाना जैसी कुप्रथाओं से संबंधित खबरें देखने-सुनने को मिलती रहती हैं। स्त्री की दशा को लेकर सबसे खतरनाक डायन प्रथा मानी जाती है। इस प्रथा को पूरी तरह आदिवासी समाज से जोड़ कर देखा जाने लगा है। भारत ही नहीं, इस प्रथा को वैश्विक संदर्भ में देखें तो ये तथ्य सामने आते हैं कि इसका अस्तित्व प्राचीन काल से संसार के अनेक भू-भागों में मिलता है।

भारत में शाकिनी, डाकिनी, चुड़ैल और डायन जैसी संज्ञाएं इस परंपरा को दी गईं। वात्स्यायन के कामसूत्र में शाकिनी का जिक्र मिलता है। भगवान शिव के पौराणिक संदर्भों में शाकिनी, डाकिनी, पिशाचिनी, भैरवी, चंडिका, जोगिनी आदि नाम शक्ति की उपासना से संबंधित हैं। बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी शकुनिका के नाम से स्त्री संबंधी इस मिथक को स्थान दिया गया है।

भारत की अधिकतर आदिवासी भाषाओं में कोई स्त्री-सूचक गाली नहीं है। हालांकि आदिम समाजों में भी गालियां हैं, मगर उनके लिए दूसरे शब्द हैं। बाप बेटे जैसे परिवार के सदस्यों के बीच झगड़ा हो जाने पर जब गुस्सा फूटता है तो एक जना पूरी तरह चुप्पी साध लेता है या घर से निकल जाता है। मेरी आंखों से दूर हो जा या कि हामेरे सामने कभी नहीं आना जैसी प्रतिक्रिया व्यक्त कर देगा झारखंड की खड़िया भाषा में सबसे बुरी गाली है तुझे बाघ खा जाए। इसी तरह बस्तर में तुझे देवता उठा कर ले जाए। क्रोध के उग्रतम आवेश में मारपीट या कल जैसी घटनाएं भी हो सकती हैं, लेकिन स्त्री को लेकर गाली नहीं दी जाएगी।[2]

आदिवासियों के समाज में औरतों को जो स्थिति पहले थी अब वह नहीं रह गई है। उन्हें नीची दृष्टि से देखा जाता है। संपत्ति पर उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। धार्मिक मामलों में उन्हें बाहर रखा जाता है निर्णय लेने में भी उनकी कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं है आदिवासी आंदोलनों में औरतों की काफी सक्रिय भूमिका रही है लेकिन इसके बावजूद आदिवासी महिलाओं का कोई विशेष नेतृत्व नहीं रहा।

आदिवासी क्षेत्रों में सैनिकों ऍ पुलिस बल का दमन और आतंक दिनोंदिन बढ़ रहा है। अर्ध सैनिक बल के जवान छापे मारने के नाम पर नादान बच्चियों तक के गालों को जलती हुई सिगरेट से दाग देते हैं। उन्हें भद्दी गालियाँ देते हैं।उनके यौनागों से छेड़छाड़ करते हैं, बलात्कार की कोशिश करते हैं। ऐसे दमन और आतंक के क्षेत्रों की लड़कियाँ, औरतें जंगल जाने से घबराती हैं।

वैसे तो आदिवासी स्त्रियाँ सदियों से अपने प्रति हो रहे शोषण के खिलाफ लड़ रही हैं। अब गैर-सरकारी संस्थाएँ भी इन्हें सहयोग दे रही हैं। नारी जागरुकता आंचलिक इलाकों तक पहुँच गई है और इसका शंखनाद करने में वे पीछे नहीं हैं। उसने कुरीतियों के खिलाफ आंदोलन छेड़ा है जो धीरे-धीरे जंगल, पहाड़ तक पहुँचकर आदिवासियों के द्वार खटखटा रहा है। नई सोच और संस्कृति के प्रति आवाहन कर रहा है। दण्डकारण्य में कई स्त्रिया अपनी जान हथेली पर लेकर आदिवासी महिलाओं को संगठित कर उनका मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। पुलिस और अर्ध सैनिक बलों के जवानों के अत्याचार के विरुद्ध कमर कस ली है आदिवासी महिलाओं ने। ये सूरज की वे किरणें हैं जो शबनम की बूंदों को मोती-सा चमकाने की जिद्द ठाने हैं।

आदिवासी समाज के लोग शमीले होते हैं, भोले होते हैं, उसका कारण है कि सरलता और सादगी आदिवासी समाज का अभिन्न अंग है वे मानते हैं कि कोई भी रीति-रिवाज मनुष्य से ऊपर या उससे बड़े नहीं हैं। वो भोले हैं, मूर्ख नहीं हैं। आदिवासी स्त्रियाँ प्रगतिशील हैं और निरंतर संघर्षरत हैं। इसका प्रमाण आप आदिवासी स्त्रियों के पर्यावरण संरक्षण से जुड़े बड़े आन्दोलनों में सहज ही देख सकते हैं। ऐसा भी नहीं है कि आदिवासी महिलाएं आज लिखना शुरू कर रही हैं, बल्कि 1930-31 से वे लिख रही हैं। उदाहरण के तौर पर आप रोज केरकेट्टा, ऐलिस एक्का या ग्रेस कुजूर का लेखन ले सकते हैं।

झारखंड की आदिवासी संथाली **कवयित्री निर्मला पुतुल** की कविताओं में सचमुच नगाड़े पर पड़ती चोट का आर्तनाद है। उसकी कविता बिटिया मुर्म के लिए शंखनाद है जैसे- उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो / उठो, अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ / उठो कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो / जैसे तूफान से बवंडर उठता है / सोचो, तुम्हारे पसीने से पुष्ट हुए दाने एक दिन लौटते हैं। तुम्हारा मुंह चिढ़ाते तुम्हारी हो बस्ती की दुकानों पर / कैसा लगता है तुम्हें जब तुम्हारी ही चीजें तुम्हारी ही पहुँच से दूर होती दिखती हैं ?

स्व. कमला भसीन ने एक बार प्रेस को संबोधित करते हुए कहा था कि विश्व के परिदृश्य में सबसे ज्यादा पुरुष और महिलाओं में समानता आदिवासी समाज में है। वर्ष 1901 से लगातार महिलाओं की प्रतिशत में कमी आई है, परंतु आदिवासी समाज की स्थिति

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

अच्छी रही है। आज भी महिलाओं को वह अधिकार नहीं मिला है जो उन्हें मिलना चाहिए। आज भी भ्रूण हत्या, महिलाओं का शोषण एवं प्रताड़ना जारी है और जबतक इन सभी की समाप्ति नहीं होती तबतक महिलाओं की आजादी पूर्ण नहीं हो सकती।

एक तरफ यह समझा जाता है कि आदिवासी स्त्रियाँ बड़े खुले विचार की होती हैं, वहीं दूसरी तरफ यह कहा जाता है कि आदिवासी पिछड़े हुए हैं और विकास नहीं चाहते। वे बेहद हिंसक प्रवृत्ति के होते हैं। यह एक समाज के बारे में हमारी दोहरी मानसिकता को दिखाता है जिसे हम अक्सर हिंसा कह देते या समझ लेते हैं, वह अपने संरक्षण के लिए भी तो हो सकता है। जमीन और जंगल पर उनका हक है जो पीढ़ियों से उसका संरक्षण कर रहे हैं गरीबी और अन्याय हमारे देश की पुरानी समस्या है।

सिनेमा में हमेशा उन्हें गरीब लाचार दिखाया जाता है, यहाँ तक कि मुख्यधारा के हिंदी साहित्य में भी अक्सर आदिवासी समाज का एक खास नकारात्मक चित्रण देखने को मिल जाता है और इन्हें आधार बनाकर आदिवासी समाज के बारे में जो धारणा बनती है ज्यादातर भ्रान्तिमय और गलत होती है। आदिवासी समाज की वर्तमान स्थिति अब सुधरने लगी है। वै जागरूकता की ओर अग्रसर हैं। वे शिक्षा के महत्व को समझ रहे हैं। अपनी विरासत को संभाले हुए आधुनिकता की ओर बढ़ रहे हैं। इनमें कई ऐसे हैं, जो अपने क्षेत्र से निकलकर शहरों में सम्मान की जिंदगी जी रहे हैं। मगर आज भी ये सरकार द्वारा उपेक्षा का व्यवहार झेल रहे हैं। इनके विकास में परियोजना आदि अवश्य होती हैं मगर इनका लाभ इन्हें नहीं मिलता है। यह फाइलों के मध्य ही दब कर रह जाती है। इतना सब होते हुए भी इनका अस्तित्व बना हुआ है क्योंकि इन्होंने लड़ना सीख लिया है.

II. विचार-विमर्श

अधिकांश आदिवासी महिलाएं जो कभी स्वतंत्र और बसी हुई थीं, अब बहुत दयनीय जीवन जीने को मजबूर हैं, क्यों? जबकि देश लंबे समय से आजाद है। तीज-त्योहारों, पर्वों और मेलों के अवसर पर ये महिलाएं सज-धज कर, नाच-गा कर जीवन व्यतीत करती नजर आती हैं।

लेकिन ज्यादातर समय अशिक्षित, गरीब कामकाजी महिलाओं को कई तरह के अजीबोगरीब काम करके जीने के लिए मजबूर किया जाता है। इन महिलाओं को आज भी मूलभूत सुविधाओं की दरकार है। कुशल नेतृत्व की दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ युद्धस्तर पर सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन से ही स्थिति में सुधार हो सकता है। वर्ष 1901 से लगातार महिलाओं की प्रतिशत में कमी आई है, परंतु आदिवासी समाज की स्थिति अच्छी रही है। आज भी महिलाओं को वह अधिकार नहीं मिला है जो उन्हें मिलना चाहिए। आज भी भ्रूण हत्या, महिलाओं का शोषण एवं प्रताड़ना जारी है और जबतक इन सभी की समाप्ति नहीं होती तबतक महिलाओं की आजादी पूर्ण नहीं हो सकती। वहीं आदिवासी समाज में दहेज प्रथा, परदा प्रथा नहीं है साथ ही उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा भी प्राप्त है। आदिवासी समाज में बेटियों को बोझ नहीं समझा जाता है। हमारे समाज में आज भी परिवार पितृ सत्तात्मक पर केंद्रीय है और यही सब बुराइयों की जड़ है। उन्होंने कहा कि पितृ सत्ता संविधान के खिलाफ है। आज परिवारों मे महिलाओं का जितना शोषण होता है और कही नहीं। महिलाओं को आज तक अंतिम संस्कार का अधिकार प्राप्त नहीं है। महिलाओं को अपवित्र समझा जाता है उन्हें धार्मिक स्थलों पर जाने पर रोक है जो गलत है। हम पुरुषों के विरूद्ध नहीं हैं पर हम महिलाओं के लिए संविधान प्रदत्त अधिकार मांगते हैं। आज तीन में से एक महिला ¨हसा की शिकार है। 40 प्रतिशत पुरूष अपनी पत्नियों को प्रताड़ित करते हैं। महिलाओं को ¨हसा नहीं आदर और प्रेम चाहिए। मौके पर होप की ट्रस्टी मनोरम एक्का, अर¨वद वर्मा, मनोरमा ¨मज व उज्जवल कुशवाहा मौजूद थे।[3]

III. परिणाम

आदिवासी, जैसा कि वे आत्म-प्रतिपादन के प्रतीक के रूप में लोकप्रिय हैं, राष्ट्रीय जनसंख्या का लगभग 8.2 प्रतिशत हिस्सा हैं। आदिवासी ज्यादातर भारत के मध्य बेल्ट और पूर्वोत्तर के कुछ हिस्सों में केंद्रित हैं। आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति सामान्य समाज की महिलाओं की तुलना में तुलनात्मक रूप से बेहतर है - ऐसा प्रतीत होता है। 1991 के दौरान भारत में जनजातियों का लिंग अनुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 971 महिलाओं को दर्शाता है, जबकि सामान्य आबादी में यह 927 महिलाएं थीं। मित्रा और सिंह (इंटरनेट) लिखते हैं कि महिलाओं के खिलाफ भेदभाव, व्यावसायिक भेदभाव और स्थिति और पदानुक्रमिक सामाजिक व्यवस्था पर जोर जो प्रमुख हिंदू संस्कृति की विशेषता है, आमतौर पर आदिवासी समूहों में अनुपस्थित हैं। भसीन (2007) यह भी लिखते हैं कि हालांकि जनजातियों में भी बेटों को प्राथमिकता दी जाती है

आदिवासी महिलाओं की स्थिति का अंदाजा मुख्य रूप से समाज में उनकी भूमिका से लगाया जा सकता है। उनकी भूमिकाएं काफी हद तक वंश प्रणाली के माध्यम से निर्धारित होती हैं। परिवार अपनी संपत्ति को वंश के अनुसार ही हस्तांतरित करने का प्रयास करते हैं। परिवार के उपनाम भी वंश प्रणाली के आधार पर ही तय किए जाते हैं। एकवंशीय प्रणाली में वंश का पता पुरुष या महिला वंश से लगाया जाता है। जब वंश का पता माता की रेखा से लगाया जाता है, तो इसे मातृवंशीय प्रणाली कहते हैं और जब इसका पता पिता की रेखा से लगाया जाता है, तो इसे पितृवंशीय प्रणाली कहते हैं। भारत में अधिकांश जनजातियाँ पितृवंशीय प्रणाली का पालन करती

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

हैं। पूर्वोत्तर में मेघालय के खासी, जैंतिया, गारो और लालुंग जैसे अपवादस्वरूप मामले हैं जो मातृवंशीय प्रणाली का पालन करते हैं। केरल के मप्पिला भी एक मातृवंशीय समुदाय हैं। द्विवंशीय वंश के बहुत कम मामले हैं।

किसी व्यक्ति की स्थिति अक्सर उस अधिकार प्रणाली पर निर्भर करती है जिसका वह समुदाय में आनंद लेता है। जब अधिकार पुरुष वंश के माध्यम से होता है, तो इसे 'पितृसत्ता' कहा जाता है और जब यह महिला वंश के माध्यम से होता है, तो इसे 'मातृसत्ता' कहा जाता है। अक्सर लोग 'वंश' को 'अधिकार' के साथ मिला देते हैं। आश्चर्य की बात नहीं है कि खासी अक्सर मातृसत्ता का पालन करने वाले माने जाते हैं। लेकिन वास्तव में, हालांकि संपत्ति माँ की वंशावली के माध्यम से विरासत में मिलती है, घर का अंतिम अधिकार माँ के भाई के पास होता है।

एक महिला की स्थिति काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस तरह के परिवार में रहती है। संयुक्त परिवार प्रणाली में सबसे बड़ी महिला को आमतौर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में विशेषाधिकार प्राप्त होता है। समुदाय में प्रचलित विवाह के प्रकार के साथ परिवार का प्रकार काफी हद तक भिन्न होता है। एकल विवाह के माध्यम से गठित एकल परिवार भारत में आदिवासी समुदायों में प्रचलित परिवार का सबसे आम प्रकार है। विस्तारित प्रकार का परिवार भी काफी आम मानदंड है, जिसमें बेटियाँ शादी के बाद मायके से दूर स्थानों पर चली जाती हैं। बड़े बेटे भी शादी के बाद माता-पिता को छोड़कर नज़दीकी इलाके में नया घर बसा लेते हैं। शादी के बाद भी सबसे छोटे बेटे का माता-पिता के साथ रहना आम बात है।

भारत में कुछ जनजातियाँ बहुविवाह प्रथा में प्रवेश करती हैं। जब एक पुरुष एक से अधिक पत्नियों से विवाह करता है, तो इसे बहुविवाह कहा जाता है। बहुविवाह दो प्रकार का हो सकता है। जब पत्नियाँ बहनें होती हैं, तो इसे सोरोरल बहुविवाह कहा जाता है और जब पत्नियाँ असंबंधित होती हैं, तो इसे गैर-सोरोरल बहुविवाह कहा जाता है। जब एक महिला एक से अधिक पतियों से विवाह करती है, तो इसे बहुपतित्व कहा जाता है। जब पति अपने भाई होते हैं, तो विवाह के प्रकार को भ्रातृत्वपूर्ण बहुपतित्व कहा जाता है। जब पति असंबंधित होते हैं, तो विवाह के प्रकार को गैर-भ्रातृत्वपूर्ण बहुपतित्व कहा जाता है। नीलगिरि के टोडा या लद्दाख और सिक्किम के भूटिया बहुपतित्व करते हैं। यह अक्सर पाया जाता है कि दो या तीन पत्नियाँ चार या पाँच भाइयों से विवाह करती हैं। इस प्रणाली को बहुपत्नीत्व कहा जाता है। उत्तराखंड के जौनसार बावर के जौनसारी लोगों में यह प्रणाली काफी आम है। ऐसे विवाहों में सबसे बड़ी महिला को आमतौर पर अधिक सम्मान और आदेश मिलता है। जौनसारी लोगों में प्रत्येक परिवार आमतौर पर पहाड़ी श्रृंखलाओं के साथ अलग-अलग ऊंचाइयों पर आवास पाते हैं। केंद्रीय गांव के आवासों को 'सदर' कहा जाता है। सबसे बड़ी पत्नी आमतौर पर वहीं रहती है। जबकि छोटी पत्नियों को घाटी के करीब या ऊंचाई पर स्थित फार्म हाउसों के बीच कड़ी मेहनत करनी पड़ती है[4]

आदिवासी समुदाय में महिलाएं कड़ी मेहनत करती हैं, इसलिए उन्हें संपत्ति माना जाता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि विवाह के दौरान वधू-मूल्य की प्रथा इनमें काफी आम है। यह सामान्य सवर्ण हिंदू आबादी से एकदम उलट है। कई बार जब भावी वर वधू-मूल्य देने की स्थिति में नहीं होता, तो उसे पत्नी के घर पर शारीरिक श्रम और सेवा करनी पड़ती है। कई बार तो वह जीवन भर पत्नी के घर पर ही रहकर 'घर जोवाई' के रूप में रहने लगता है। हाल के वर्षों में जैसे-जैसे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था स्थापित हो रही है और महिलाएं अपनी पारंपरिक भूमिका से वंचित हो रही हैं, उनका आर्थिक मूल्य घट रहा है और 'वधू-मूल्य' की प्रथा की जगह सामान्य समाज में देखी जाने वाली दहेज प्रथा ने ले ली है। जौनसारी लोगों में नए पति को सूट की रकम या पूर्व पति द्वारा पूर्व विवाह के दौरान लड़की को वधू-मूल्य के रूप में दी गई रकम देनी पड़ती है। यह रकम काफी बड़ी हो जाती है, क्योंकि इसमें ब्याज भी जुड़ जाता है। 'सूट' के पैसे चुकाने के लिए, पत्नी को अक्सर देहरादून, मेरठ, सहारनपुर, मुरादाबाद, लखनऊ और दिल्ली जैसे शहरों में वेश्यावृत्ति के लिए भेज दिया जाता है। वे वस्तुतः 'बंधुआ' मजदूर बन जाती हैं।

आदिवासी महिलाओं की स्थिति आम तौर पर उनकी आर्थिक भूमिका पर निर्भर करती है। पहले आदिवासी आम तौर पर जंगल में रहते थे और उनकी आजीविका काफी हद तक खाद्य-संग्रह अर्थव्यवस्था पर निर्भर थी। पुरुषों से ज़्यादा महिलाएँ लकड़ी और चारा लाने के लिए लंबी दूरी तय करती थीं। इसके अलावा, वे अपने खाने और बिक्री के लिए फल, कंद-मूल, लाख, गोंद और पत्तियाँ भी इकट्ठा करती थीं। पुरुष भी लकड़ी और लट्ठे इकट्ठा करके उनका साथ देते थे। वे पेड़ों पर चढ़कर महिलाओं द्वारा ज़मीन पर इकट्ठा किए गए फलों को हिलाते थे। चूँकि बड़े पैमाने पर वनों की कटाई हुई है, इसलिए महिलाओं को इकट्ठा करने की अर्थव्यवस्था को बनाए रखने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। चौधरी (2010) ने देखा कि मध्य प्रदेश के बैतूल के आदिवासी इलाकों में, जलाऊ लकड़ी इकट्ठा करना और बेचना आम तौर पर आदिवासी महिलाओं का काम है। वे इसे साहपुर में बेचती हैं और जो भी आय होती है, उसे वे तुरंत चावल, दाल, खाद्य तेल, साबुन, डिटर्जेंट पाउडर, तंबाकू, बीड़ी आदि जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में खर्च कर देती हैं।

देश के कई हिस्सों में स्विडेन खेती या स्लैश एंड बर्न खेती या झूम खेती, जैसा कि पूर्वोत्तर में कहा जाता है, प्रचलन में थी। बोसरुप स्विडेन खेती को महिलाओं का उद्यम कहते हैं क्योंकि वे ही लगभग पूरी तरह से इस काम को संभालती थीं। जबकि पुरुष मुख्य रूप से पेड़ों को काटते थे और उन्हें सामूहिक रूप से आग जलाने से पहले सूखने के लिए जमीन पर फैला देते थे, वहीं महिलाएँ ही बीज बिखेरने, निराई करने और कटाई करने में लगी रहती थीं। यह महिलाएँ ही थीं जो घर पर बीजों को सुरक्षित रखती थीं और हर मौसम

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

में उगाई जाने वाली फसलों के बारे में निर्णय लेती थीं। पुरुष ज्यादातर जंगली जानवरों से फसलों की रक्षा करते थे और बड़े और छोटे जंगली जानवरों को पकड़ते थे।

हाल के वर्षों में जनसंख्या विस्फोट और आप्रवास के कारण झूम खेती धीरे-धीरे अपनी उपयोगिता खो रही है। इसके अलावा, राज्य की पूंजीवादी नीतियों के कारण झूम खेती की जगह स्थायी सीढ़ीदार गीले चावल की खेती ने ले ली है। बहु-फसल पद्धतियां भी लुप्त हो रही हैं और एकल-फसल पर जोर दिया जा रहा है। नकदी फसलों और बागवानी को भी प्राथमिकता दी जा रही है। इस प्रक्रिया में महिलाएं अपना श्रम कार्य खो रही हैं और पूर्वोत्तर के कई स्थानों जैसे नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश में प्रवासी पुरुष मजदूरों को काम पर रखा जा रहा है।

पहाड़ी क्षेत्रों के अलावा, आदिवासी भी आजकल वन-आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर स्थायी खेती को प्राथमिकता दे रहे हैं। वे नकदी फसलों और विदेशी उच्च-नस्ल वाली फसलों को उगाना पसंद कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में महिलाएं अपने काम से विस्थापित हो रही हैं। पश्चिम बंगाल में, संथाल महिलाएं समूहों में अपने सूखे क्षेत्रों में खेती का काम पूरा करने के बाद निराई-गुड़ाई और रोपाई के लिए दक्षिणी जिलों में पलायन करती हैं या 'नमल' के लिए जाती हैं।

मध्य भारत में पिछले कुछ समय से जनजातियों को उद्योगों के संपर्क में लाया जा रहा है। यहां कई बड़े और छोटे बांध और कई विकास परियोजनाएं भी बनी हैं। जंगल खत्म हो रहे हैं और खेती के लिए बहुत कम गुणवत्ता वाली जमीन बची है, इसलिए जनजातियों को औद्योगिक क्षेत्र में कुली के रूप में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान के कई हिस्सों में भी जनजातियों को ईंट भट्टों और शहरों में निर्माण क्षेत्र में काम करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इन जगहों पर मौसमी तौर पर जाने पर आदिवासी पुरुष और महिलाएं दोनों ही ठेकेदारों और बिचौलियों द्वारा शोषित होते हैं। महिलाओं को यौन शोषण का सामना करना पड़ता है, जिससे वे और भी अधिक पीड़ित होती हैं। इसके अलावा, उन्हें पुरुषों की तुलना में बहुत कम भुगतान किया जाता है।

पूर्वोत्तर की आदिवासी महिलाएँ अपने बुनाई कौशल के लिए मशहूर थीं। लगभग हर आदिवासी लड़की घर पर बुनाई सीखती थी। वे आमतौर पर अपने ख़ाली समय में और खुद के उपभोग के लिए बुनाई करती थीं। प्रत्येक कपड़ा संबंधित जनजातियों के एक निश्चित इतिहास को दर्शाता था। लेकिन अब उत्पादों के व्यावसायीकरण के साथ, महिलाओं ने डिज़ाइन पर नियंत्रण खो दिया है क्योंकि बाज़ार निर्णायक कारक बन गया है। इसके अलावा, कई मामलों में मारवाड़ी व्यापारियों ने व्यवसाय को अपने हाथ में ले लिया है और प्रवासी गैर-आदिवासी व्यक्तियों से कपड़ा बुनवा रहे हैं।

आदिवासी महिलाओं को अचल संपत्ति पर बहुत कम नियंत्रण प्राप्त है। उन्हें शायद ही कभी ज़मीन विरासत में मिलती है, खासकर पितृसत्तात्मक समाजों में। खासी में भी, यह मुख्य रूप से सबसे छोटी बेटी या 'खद्दू' होती है, जैसा कि उसे स्थानीय रूप से जाना जाता है, जिसे घर और संपत्ति विरासत में मिलती है। आदिवासी महिलाओं को आम तौर पर माँ से गहने विरासत में मिलते हैं। प्रथागत कानून उन्हें ज़मीन के मालिक होने की अनुमति नहीं देते हैं। यह मुख्य रूप से इस कारण से है कि अक्सर संथाल विधवाओं को डायन घोषित कर दिया जाता है और उनके करीबी रिश्तेदारों द्वारा उनकी हत्या कर दी जाती है। (केलकर और देवनाथन: 1993) लालहरियातपुई (2010) मिजोरम में मिजो महिलाओं के बारे में लिखते हैं कि संपत्ति के उत्तराधिकार के मामले में उनके साथ बहुत भेदभाव किया जाता था क्योंकि उन्हें कभी भी ज़मीनी संपत्ति पर अधिकार नहीं दिया जाता था। अगर परिवार में कोई बेटा नहीं है, तो पैतृक घर सहित पारिवारिक संपत्ति पिता के भतीजे को मिलनी चाहिए।

हालाँकि, यह देखा गया है कि रसोई के बगीचे को पत्नी द्वारा नियंत्रित किया जाता है। सूअर, बकरी और मुर्गियाँ भी उसी की हैं। पालतू जानवरों की बिक्री से प्राप्त आय गृहिणी द्वारा रखी जाती है और वह अपने मायके जाने पर अपनी पसंद की खरीदारी करती है। महिलाएँ साप्ताहिक बाज़ारों में फल और वन उत्पाद बेचने में भी माहिर हैं। सब्जियाँ और बागवानी उत्पाद आमतौर पर वे बाज़ारों में बेचती हैं।

पूर्वोत्तर की कुछ जनजातियों की महिलाएँ व्यापार करने में बहुत कुशल हैं। मेघालय के शिलांग और नोंगपोह के बाज़ारों में मुख्य रूप से खासी महिलाएँ ही दुकानें चलाती हैं। मिज़ोरम में भी कई महिलाएँ बड़ी दुकानों और बड़े व्यापार का प्रबंधन करती हैं। लालहरियातपुई (ibid.) का मानना है कि मिज़ोरम राज्य में महिला कार्यबल प्राथमिक क्षेत्र में ज़्यादा केंद्रित है और उनमें से कई खेतिहर मज़दूर बन रही हैं। वे आगे कहती हैं: "कई महिलाएँ छोटे-छोटे पारिवारिक व्यवसाय चलाती हैं, जिन्हें माइक्रो एंटरप्राइजेज कहा जाता है, जिसके लिए बहुत कम शुरुआती पूंजी की ज़रूरत होती है और अक्सर इसमें घरेलू व्यवस्था के तहत उत्पादित खाद्य पदार्थों और हस्तशिल्प का विपणन शामिल होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि महिलाओं की पूंजी तक सीमित पहुँच उनके छोटे निवेश पर उच्च दर से रिटर्न देती है। लेकिन अविश्वसनीय रूप से कम पूंजी-श्रम अनुपात महिलाओं को कम उत्पादकता वाले उपक्रमों तक सीमित रखता है।"

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

भारत में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में कोई भूमिका नहीं है। अतीत में भी, हालांकि मध्य भारत और पूर्वोत्तर में कई जनजातियों के लिए स्नातक छात्रावास थे, लड़कियों के लिए शायद ही कुछ था। लड़कियां छात्रावासों में रहने वाले लड़कों के लिए इधर-उधर घूमती रहती थीं। आदिवासी महिलाओं को ग्राम परिषदों में कोई स्थान नहीं था। महिलाओं को पारंपरिक पंचायतों में कभी प्रतिनिधित्व नहीं मिला। अब केवल राज्य के अनिवार्य प्रावधानों के कारण कुछ महिलाएं पंचायतों में चुनी जा रही हैं। लेकिन ऐसे मामलों में भी, आमतौर पर महिलाओं को उनके पति या रिश्तेदारों द्वारा निर्देशित किया जाता है, जिनके पास पहले से ही इलाके में पर्याप्त शक्ति है। फिर भी देश में शायद ही कोई आदिवासी महिला विधायक या सांसद हो। केंद्रीय समाज कल्याण मंत्री अगाथा संगमा के मामले में, वह एक अपवाद हैं; उनके पिता पूर्णो संगमा देश के एक प्रमुख राजनेता थे और एक कार्यकाल के लिए संसद में लोकसभा के अध्यक्ष भी रहे।

पूर्वोत्तर या मध्य भारत में हाल ही में हुए उभार के दौरान, कई आदिवासी महिलाएँ भूमिगत सेना में शामिल हुई हैं। वे अपने घर छोड़कर सैन्य प्रशिक्षण लेती पाई जाती हैं। पूर्वोत्तर में, कई लड़कियाँ भूमिगत सेना के लिए काम करने के लिए जानी जाती थीं। उनमें से कई ने अपनी जान भी कुर्बान कर दी है। लेकिन उनमें से भी, महिलाओं को नेतृत्व करने के लिए कभी नहीं जाना जाता है। नागा मदर्स एसोसिएशन ने हाल के दिनों में भूमिगत और भारतीय सुरक्षा बलों के बीच मध्यस्थ बनने के लिए कुछ अच्छा नाम कमाया है। सिर काटने के दिनों में भी, नागा महिलाओं ने युद्धरत गाँवों के बीच शांति स्थापित करने के लिए बहुत बहादुरी से काम किया। वे युद्धरत ग्रामीणों के बीच शांतिदूत के रूप में काम करती थीं (ज़ेहोल: 1998) - "अगर हम याद करें कि तांगखुल, अन्य नागा समाजों की तरह जो झगड़ते समुदाय थे, तो हम पाते हैं कि तांगखुल समाज में, महिलाओं को वहाँ उल्लेख किया गया है कि, जब एक दल पर बहुत दबाव डाला जाता था और एक या दो योद्धा मारे जाते थे, और फैसला ज्ञात हो जाता था, तो एक तटस्थ बल आता था। तटस्थ बल या तो पड़ोसी गाँवों का होता था या पुखरेला नामक तटस्थ महिलाओं का... उन्हें एक नियम के रूप में नुकसान नहीं पहुँचाया जा सकता था। तटस्थता के लिए उनका बहुत सम्मान किया जाता था, और उन्हें शांति का दूत कहा जाता था। बीते दिनों में, जब सिर काटने की प्रथा थी, इन पुखरेलाओं ने पुरुषों की जान बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।" विटसो (2003) ने यह भी देखा कि नागालैंड के चाखेसांग नागाओं के बीच, पारंपरिक गाँव के पुजारी की पत्नी के पास बहुत शक्ति और सम्मान था। वह यह भी नोट करती है कि हालाँकि पारंपरिक रूप से महिलाओं के पास कोई राजनीतिक शक्ति नहीं थी, लेकिन उनके फैसले, विशेष रूप से महिलाओं के मुद्दों से संबंधित, हमेशा सम्मान किए जाते थे।

इतिहास में केवल दो रानियों के नाम ही मिलते हैं जिन्होंने अपने दुश्मनों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। मध्य प्रदेश के गढ़ मंडला की रानी दुर्गावती का नाम निश्चित रूप से बहुत प्रसिद्ध है। दूसरी शख्सियत रानी गाइदिन्ल्यू हैं, जो नागा नेता थीं और जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का नेतृत्व किया था। उन्होंने मणिपुर, नागालैंड और असम के निकटवर्ती क्षेत्रों में मातृभूमि के लिए जेलियांग्रोंग नागाओं का नेतृत्व भी किया था। उन्हें रानी की उपाधि जवाहरलाल नेहरू ने दी थी, जो स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उनके बारे में जानने आए थे। गासाह ने कहा है कि मेघालय के जैंतिया लोगों में भी महिला शासक दिखाई दी थीं, (डाउन्स: 1996) हाल के दिनों में कुमाऊं की भोटिया आदिवासी महिलाएं तब सामने आईं जब उन्होंने लकड़ी के ठेकेदारों के खिलाफ वन आंदोलन- चिपको आंदोलन का नेतृत्व किया

ईसाई धर्म ने आदिवासी महिलाओं को महत्वपूर्ण रूप से मुक्ति दिलाई है। पहले जहां महिलाओं को स्कूल जाने से रोका जाता था, वहीं मिशनरियों ने स्कूल खोले और लड़कियों को उनमें जाने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने चर्च फ़ोरम भी खोले जहाँ महिलाएँ भाग ले सकती थीं और नेतृत्व भी कर सकती थीं। प्रोटेस्टेंट चर्च ने इन मामलों में कैथोलिक चर्च पर बढ़त हासिल की। रोमन कैथोलिक फादर ने आदिवासी महिलाओं को पैरिश में कम जगह दी। कोई आश्चर्य नहीं कि खासी और गारो जैसी मातृसत्तात्मक जनजातियों में प्रोटेस्टेंट बहुत अधिक स्वीकार्य हो गए। उन्होंने लड़कियों को न केवल अच्छी गृहिणी बनने के लिए बल्कि शिक्षक, डॉक्टर और नर्स बनने के लिए भी प्रशिक्षण दिया। लेकिन लालहरियातपुई (उपरोक्त) का कहना है कि मिज़ो समाज में महिलाओं को सामाजिक संगठनों और चर्च जीवन दोनों में सभी निर्णय लेने वाली संस्थाओं से बाहर रखा जाता है। इंजील कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बावजूद उन्हें चर्च प्रशासन में कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। वह निष्कर्ष निकालती हैं: "मिज़ो समाज में चर्च एक प्रमुख भूमिका निभाता है। इसलिए, एक विकासशील चर्च या राज्य के निर्णय का मानदंड महिलाओं की स्थिति, उनके साथ व्यवहार और सम्मान का तरीका तथा उन्हें दी जाने वाली नौकरियां हैं।"

IV. निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर, एक बार फिर कहा जा सकता है कि यद्यपि भारत में जनजातीय समाज में महिलाओं को घुलने-मिलने और घूमने-फिरने की अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है, फिर भी उनके सामाजिक संगठन और संस्थाएं अभी भी भेदभावपूर्ण हैं, विशेष रूप से प्रथागत कानूनों के संबंध में जो संपत्ति और उत्तराधिकार के स्वामित्व को निर्देशित करते हैं या घरेलू और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में अधिकार का प्रयोग करने के संबंध में।[5]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.802 | A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 11, Issue 6, June 2024

संदर्भ

1. चौधरी, एस.एन., 2010, ट्राइबल इकोनॉमी एट क्रॉसरोड्स, नई दिल्ली: रावत।
2. केलकर, जी. और देवनाथन, 1993, "महिला कानून अधिकार और चुड़ैलें" एम. मिरी (सं.), ट्राइबल सोसाइटी में निरंतरता और परिवर्तन; शिमला: आईआईएएस।
3. लालहरियातपुई, 2010, मिजोरम में महिलाओं की आर्थिक भागीदारी; नई दिल्ली: अवधारणा।
4. विटसो, ए., 2003, प्रथागत कानून और महिलाएं: चाखेसांग नागा; नई दिल्ली: रीजेंसी।
5. ज़ेहोल, एल., 1998, नागा सोसाइटी में महिलाएं; नई दिल्ली: रीजेंसी।

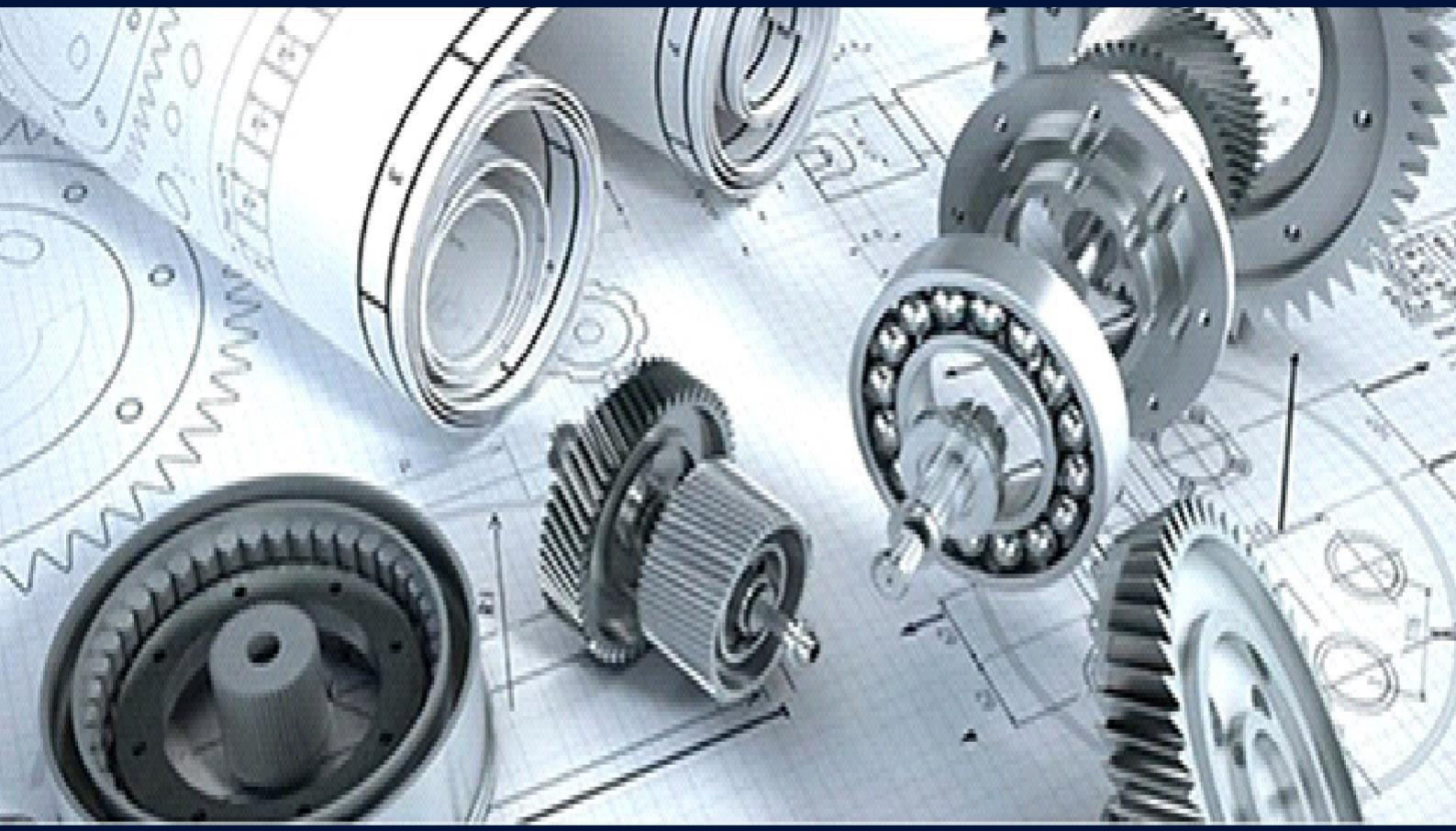

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com